Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
June 2024
ISSN 2229-3388

संस्कृत रंगमञ्च के अभिनव आयाम एवं आधुनिक नाटककार

डॉ. शेषनाथ मिश्र

संस्कृत विभाग,सत्यवती महाविद्यालय

दि. वि.दिल्ली

संस्कृत साहित्य की धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही है। भारत में सम्राट् पृथ्वीराज के अनन्तर बारहवीं शताब्दी मुस्लिम शासनसत्ता स्थापित हो जाने के बाद राजदरबारों में अरबी-फारसी का वर्चस्व स्थापित हो गया, किन्तु संस्कृत में रचनाएँ होती ही रहीं। मुगलकाल में अनेक उत्कृष्ट महाकाव्य तथा अन्य रचनाएँ की गईं, जिनमें आसफविलासः, जहाँगीरचरितम्. शेकशुभोदयम्, पारसीकप्रकाशः, चिमनीचरितम् आदि मुख्य हैं।

कुछ विद्वानों का मानना है कि संस्कृत रचना का युग सत्रहवीं शताब्दी के साथ समाप्त हो गया। प्रायः लोग पण्डितराज जगन्नाथ को ही संस्कृत का अन्तिम कवि तथा अलंकारशास्त्री आचार्य मानते हैं। विद्वानों द्वारा लिखित संस्कृत साहित्य के इतिहास ग्रंथों ने इस भ्रान्ति को पुष्ट किया। ए. बी. कीथ, बलदेव उपाध्याय, चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा कृष्णमाचारी आदि किसी भी लेखक ने अपने ग्रन्थ में उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी ई. की रचनाधर्मिता को सम्मिलित नहीं किया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में इस ओर विद्वानों का ध्यान गया है। अनेक सत्य उभर कर सामने आये हैं.

संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के उनमुक्त एवं भव्य विचारों का रुचिर दर्पण है। भारतवर्ष में सांसरिक जीवन के उपकरणों की सुलभता होने के कारण भारतीय समाज जीवन-संग्राम के विकट संघर्ष से स्वयं को पृथक् रखकर आनंद की अनुभूति को वास्तविक एवं शाश्वत लक्ष्य मानता है। इसलिए संस्कृत काव्य जीवन की विषम परिस्थितियों के बावजूद आनंद की खोज में सदा संलग्न रहा है। आनंदस्वरूप परमात्मा का अंश होने के कारण ही मनुष्य के समस्त क्रिया-कलाप आनंदानुभूति के लिए होते हैं। संस्कृत-साहित्य उस आनन्द का प्रधान वाहक रहा है। जहाँ एक ओर संस्कृत के काव्यों में संस्कृति अपनी अनुपम गाथा सुनाती है , वहीं दूसरी ओर संस्कृत नाटकों में वह अपनी कमनीय क्रीड़ा दिखाती है। नाटक संस्कृत-साहित्य का गौरवपूर्ण अंग है। नाटक जीवन की अनुकृति है और जीवन स्वयं एक प्रत्यक्ष नाट्यनुभूति। एक महान् नाटककार ने कहा भी है कि यह संसार एक रंगमञ्च है और हम सब इस विशाल रंगमञ्च में हम अपनी-2 भूमिका निभाते हैं। जीवन की यह जीवंतता और साक्षात्कारी नाटकीय भूमिका मनुष्य जीवन को प्रतिपल चुनौतीपूर्ण बनाकार उसे व्यतीत करने कि सीख देती है। नाटक में परिवर्तित जीवन का छोटा संस्करण रंगमञ्च के अनेक आयामों को स्पर्श करता हुआ, मनुष्य जीवन को एक नया विचार प्रदान करक, गहन चिंतन करने पर विवश कर देता है।

प्रेक्षागृह दीवारों से टकराकर गूँजती हुई आवाज,नेपथ्य से आते हुये संगीत के स्वर और मञ्च पर पत्रों कि हलचलों से निर्मित वातावरण नए स्वप्न लोक का सृजन करता है। इस स्वप्न लोक कि अनुभूति हमें यथार्थ से अलग नहीं करता,अपितु हमारे जीवनानुभव के लिए एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करता है,जिस पर हमारे भाव,विचार और जीवनदृष्टि प्रतिस्थापित होती है। यही कारण है कि साहित्य की समस्त विधाओं में नाटक ही एकमात्र ऐसी विधा है,जो पाठ्य और दृश्यगत दोनों आयामों में परिवर्तित अनुभूतियों को अधिक मार्मिक और अधिक संप्रेषणीय बनाने में समर्थ है।

नाटक दृश्यगत विधा है। इसलिए इसकी जीवंतता और सार्थकता रंगमञ्च पर प्रदर्शित होने में है। नाटककार रंगमञ्च को ध्यान में रखते हुये ही नाट्य सृजन करता है। रंगमंच वह स्थान है , जहाँ नृत्य, नाटक , आदि का मंचन किया जाता है । रंगमंच दो शब्दों से मिलकर बना है – रंग और मंच । रंग से आशय है , नाटक के दृश्य को आकर्षक बनाने के लिए दीवारों, छतों और पर्दों आदि पर

विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती है तथा अभिनय करने वाले पात्रों की वेषभूषा एवं सज्जा में अनेक रंगों का प्रयोग होता है , वह रंग कहलाता है । मंच से तात्पर्य है , दर्शकों की सुविधा के लिए रंगमंच का तल फर्श से कुछ ऊंचा बना होता है । सामान्य शब्दों में कहा जाए तो रंगमञ्च दो शब्दों से मिलकर बना है-1.रंग और 2. मञ्च। 'रंग' शब्द का अर्थ है – नाच और नृत्य । 'मञ्च' शब्द का अर्थ है- ऊँचा बना हुआ मंडप। इस प्रकार रंगमञ्च का अर्थ हुआ – वह उच्च स्थान जहाँ पर रंगकर्मी नाच,नृत्य ,नाटक आदि अभिनय कलाओं को प्रदर्शित करते हैं । भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में 'रंगपूजा' शब्द का अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है। स्वाभाविक रूप से इसका शाब्दिक अर्थ 'मञ्च –पूजा' ही होता है। इस शब्द का अर्थ भरत मुनि ने मञ्च से लिया है-

"सर्त्यलोकेऽप्यर्थ वेद: शुभां पूजामवाप्स्यति ।

अपूजयित्वा रंगं तु नैव प्रेक्षा प्रवर्तते।।"

रंगमञ्च कलात्मक अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम है,जिसमें मनोरंजन का अंश अन्य कलाओं की तुलना में अपेक्षाकृत सर्वाधिक है। रंगमञ्च पर प्रदर्शित नाटक प्रेक्षकों का रंजन करके ही सम्पूर्ण सफल होता है और उद्देश्यपूर्ण करता है। किन्तु वह मनोरंजन का ऐसा साधन और कलात्मक अभियक्ति का ऐसा रूप है,जिसके द्वारा हम जीवन की नानाविध अनुभूतियों का उदात्त से लगाकर भावावेगों तथा भावदशाओं का और उसके विविध शारीरिक तथा अन्य मानसिक प्रभावों का लगभग प्रत्यक्ष रूप से सामना करते हैं। एक प्रकार से यह सभी अभिव्यक्तियों के अनुशीलन द्वारा होता है,परंतु जितनी तीव्रता से तथा जीतने व्यापक रूप से अधिक से अधिक व्यक्तियों का एक साथ ,यह रंगमञ्च पर नाट्याभिनय द्वारा होता है,उतना और कहीं नहीं । इस दृष्टि से रंगकला द्वारा संस्कृति के इस मूल धर्म की प्राप्ति कहीं अधिक संपूर्णता से हो सकतों है और होती भी है। क्योंकि यह जीवन के विभिन्न अनुभवों के आस्वादन द्वारा हमारे मन को अधिक संवेदनशील और ग्रहणशील बनाए ।

रंगमञ्च कि यह विशेषता उसे किसी भी देश और काल की संस्कृति का महत्वपूर्ण उपदान बनाती है। साथ ही उसे उस संस्कृत के प्रसार और विस्तार का सबसे सशक्त साधन बनाती है। वास्तव में रंगमञ्च द्वारा यह कार्य एक साथ कई स्तरों पर सम्पन्न होता है। संयुक्त दृश्य और श्रव्य माध्यम होने के कारण विस्तार कि दृष्टि से उसका प्रभाव समुदाय के शिक्षित-अशिक्षित सभी वर्गों पर पड़ता है। रंगशाला में विभिन्न वर्गों के दर्शक एक साथ बैठते हैं और मञ्च पर प्रस्तुत नाटक कि भावदशाओं का एक साथ आस्वादन भी करते हैं।

संस्कृत रंगमञ्च की परम्परा -

भारतीय रंगमञ्च का इतिहास बहुत प्राचीन है। यह माना जाता है कि नाट्यकला का विकास प्रथमत:भारत में ही हुआ है। ऋग्वेद में पुरुरवा-उर्वशी ,यम-यमी आदि के संवादों में नाटक के विकास के सूत्र पाये जाते हैं। संभवत: इन संवादों से लोगों का ध्यान नाटक एवं नाट्यकला की ओर आकृष्ट हुआ। आगे चलकर भरत मुनि इसके प्रणेता के रूप में जाने गए । इन्होंने अपनी रचना "नाट्यशास्त्र" में नाटक की विकास प्रक्रिया के विषय में इस प्रकार बताया है- नाट्यकला की उत्पत्ति दैवी है अर्थात् दुखरहित सत्ययुग व्यतीत हो जाने पर त्रेतायुग के आरंभ में देवताओं ने स्रष्टा ब्रह्मा से मनोरंजन कोई ऐसा साधन उत्पन्न करने कि प्रार्थना की,जिससे देवता लोग अपना दुख भूल सकें और आनंद प्राप्त कर सके । फलत:

उन्होंने ऋग्वेद से कथोपकथन,सामवेद से गायन,यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाटक का निर्माण किया । विश्वकर्मा ने रंगमञ्च बनाया था । भारतीय रंगमञ्च पर प्रकाश डालने वाला ग्रंथ भरत मुनि कृत "नाट्यशास्त्र" प्रथम कृति है। उनकी रंगमंचीय अवधारणा के मूल में धार्मिक भाव प्रेरक तत्व हैं। भरत मुनि का "नाट्यशास्त्र" इस प्रमाण की पुष्टि करता है। उनके वर्णनों के अनुसार जब सर्वप्रथम नाटक का अभिनय प्रारम्भ हुआ,तब वहाँ एकत्रित दानव क्रुद्ध हो गए और उसे असफल बनाने के लिए विभिन्न प्रकार

ANUSANDHANVALLARI
ISSN: 2229-3388

Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
June 2024
ISSN 2229-3388

के उत्पात करना प्रारम्भ कर दिये। अभिनय में बाधा उत्पन्न हो गयी। सूत्रधार एवं अन्य अभिनयकर्ता की चेतना ही जाती रही। तत्पश्चात् इंद्र ने अपने उत्तम ध्वज के द्वारा रंगपीठ पर उपस्थित असुरों को मार-2 कर जर्जर कर दिया। तदुपरान्त ब्रह्मा के पास सभी देवता गए और तब ब्रह्मा ने नाट्यगृह की रचना का आदेश दिया। विश्वकर्मा ने सर्वगुण सम्पन्न नाट्यमंडप की रचना की। उसके पश्चात् ब्रह्मा ने नाट्यगृह की रक्षा केलीए विभिन्न देवताओं को विभिन्न स्थानों पर नियुक्त किया। आचार्य भरत ने रंगशालाओं की स्थिति की ओर भी प्रकाश डाला है। "नाट्यशास्त्र" के अंतर्गत आकार और परिमाण के आधार पर तीन प्रकार की रंगशालाओं (रंगमञ्च) का वर्णन किया है। इनमें भिन्न प्रकार के नाटकों के अभिनय किए जाने का संकेत भी भरत मुनि ने किया है। यथा देवताओं के लिए ज्येष्ठ मंडप(प्रेक्षागृह), राजाओं के लिए माध्यम और सामान्य लोगों के लिए कनिष्ठ मंडप का उल्लेख किया है।

नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में नाट्यमंडप के भेदोपभेद का निरूपण, प्रेक्षागृहों की रचना का विधान, रंगशाला का भूमिविभाग और उसके अंग प्रत्यंग का सम्यक निरूपण किया गया है। रंगमंच इत्यादि अनेक नाट्यङ्गविषयक तत्त्वों का विशद विवेचन इस अध्याय में हुआ है। रंगमञ्च का क्रमिक विकास हमें स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। वास्तव में जहाँ-2 प्रांभिक सभ्यता का विकास हुआ , वहाँ-2 रंगशाला के स्वरूप भी मिलते हैं। आश्चर्यजनक तथ्य यह कि उन दिनों आवागमन और संचार के माध्यम आज की तरह विकसित नहीं थे , फिर भी इन रंगशालाओं की निर्माण शैली लगभग एक समान थी। संस्कृत रंगमञ्च के विकास में धर्म एवं इतिहास का समन्वय है। प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में अनेक सूक्त ऐसे हैं , जिनमें एक से अधिक वक्ताओं क परंपरा है। इसीलिए इनको संवाद सूक्त कहा गया है। इन संवादों में पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी आदि के संवाद महत्वपूर्ण हैं। संस्कृत रंगमञ्च का विकास यहीं से प्रारम्भ माना जाता है। कात्यायन श्रौतसूत्रों में सोमपान के अवसर पर एक लघु अभिनय का भी आयोजन किया गया था। प्रो. मैक्समूलर ,प्रो. सैलवेन लेवी आदि विद्वानों ने वैदिक काल के इन्हीं सूक्तों के द्वारा अभिनय के प्रारम्भिक रूप को स्वीकार किया है। वैदिक मंत्र ही नाटकीय तत्वों को धार्मिक अवसरों पर प्रस्तुत करते रहे हैं। यजुर्वेद के शैलूष जाति को व्यसाय रूप में नाटक करने वाली जाति माना गया है। वैदिक साहिय के अतिरिक्त प्राचीन काल के व्याकरण एवं अन्य संस्कृत ग्रन्थों में नाटक एवं अभिनय का उल्लेख मिलता है। रामायण , महाभारत , हरिवंशपर्व इत्यादि ग्रन्थों में नट, नटी तथा नर्तकों का उल्लेख मिलता है। आचार्य कौटिल्य कृत "अर्थशास्त्र" भी तत्कालीन नातों कि दैनिक परिचर्या प्रस्तुत करता है। जिससे ज्ञात होता है कि अभिनय द्वारा जीवकोपार्जन भी किया जाता था।

संस्कृत नाट्य-साहित्य बहुत अधिक प्राचीन है। इस्लाम धर्म की कट्टरता के कारण से मुगलकाल की लगभग ढाई सौ वर्षों तक भारतीय रंगमञ्च और प्रेक्षागृहों का लोप हो गया था। किन्तु लोककथाओं के माध्यम से यह जीवित रहा। संस्कृत का रंगमञ्च शास्त्रबद्ध रहा , जिसमें नाट्य प्रकारों, रंग, स्थल , अभिनय , मञ्चसज्जा ,उपकरणों के साथ शैली की भी परिभाषा निर्धारित थी। रस इसका केन्द्रीय तत्व था। भास ,कालीदास ,शूद्रक ,भवभूति और विशाखदत्त आदि संस्कृत के उल्लेखनीय नाटककार हैं। इसके बाद भारतीय रंगमञ्च की दूसरी परंपरा के रूप में लोकनाट्यों की शुरुआत हुई, जिसे कुछ विद्वानों ने "परंपराशील नाट्य" कहा है। परंपराशील रंगमञ्च की प्रवृत्तियों को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया गया है – प्रथम धार्मिक , इसमें रामलीला , रासलीला , कुट्टीयट्टम, अंकियानाट, थेरूकुट्टु ,यक्षगान आदि शैलियाँ हैं। द्वितीय शुद्ध लौकिक है , इसमें ख्याल , स्वांग , नौटंकी, नाच, तमाशा आदि शैलियाँ पायी जाती हैं। इनके कथानक जन सामान्य से जुड़े होते हैं। मुक्ताकाशी रंगमञ्च,अग्रमञ्च या रंगद्वार युक्तमञ्च (प्रोसीनियम स्टेज), अखाड़ा रंगमञ्च (अरेना स्टेज), बहुरूप रंगमञ्च(मल्टी फार्म स्टेज),कक्षरंगमञ्च(बौक्स सेट स्टेज) आदि रंगमञ्चों का क्रमिक विकास हुआ है। भारत में रंगमञ्च के विकास देखते हुये अप्रैल 1959 में "राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय " की स्थापना की गयी। इस संस्था ने देश की प्रसिद्ध परंपरा को आगे बड़ाया है।

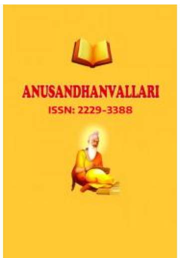

Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
June 2024
ISSN 2229-3388

प्रमुख आधुनिक नाटककार-

आधुनिक नाटककारों में वी. राघवन , अभिराज राजेंद्र मिश्र, रामजी उपाध्याय ,हरिनारायण दीक्षित, ओम प्रकाश शास्त्री, के.एस.नागरजन, रामशीष पाण्डेय, श्री भिवेलकर, विष्णुदत्त त्रिपाठी आदि को प्रमुख रूप से शोधकार्य के लिए सम्मिलित किया गया है। इनकी रचनाओं में नाट्य तकनीकी प्रयोग विज्ञान की गवेषणा की जाएगी। आधुनिक संस्कृत साहित्य में अनेक नाटकों की रचना की जा रही है , जिसमें रंगमञ्च को प्रमुखता दी जा रही है। रंगमञ्च में तकनीकि का भी प्रयोग किया जा रहा है।

आधुनिक नाट्य रचनाएँ आधुनिक संस्कृत साहित्यकारों ने विपुल मात्रा में संस्कृत नाट्यकृतियों की रचनाएँ की हैं। बहुत-सी रचनाओं का अभिनय भी विभिन्न विशिष्ट अवसरों पर होता रहता है। कुछ नाट्यकृतियाँ इसी उद्देश्य से लिखी गई हैं। इनमें कहीं-कहीं आधुनिक सामाजिक समस्याओं का भी चित्रण किया गया 1 कुछ नाटकों की रचना आधुनिक तथा मध्यकालीन महापुरुषों के जीवनचरित को लेकर की गई हैं। अनेक नाटक प्राचीन कथाओं को भी अभिनव दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। प्रमुख संस्कृत रूपकों में मथुरा प्रसाद दीक्षित कृत वीरप्रताप, शंकरविजय, गान्धिविजय एवं भारतविजय; हरिदाससिद्धान्तवागीश कृत मेवाप्रताप, बंगीवप्रताप एवं शिवाजीचरित; रामजी उपाध्याय कृत सीताभ्युदय एवं कैकेयीविजय; रेवाप्रसाद द्विवेदी कृत यूथिका, सप्तर्षि कांग्रेस; वासुदेव द्विवेदी कृत भोजराजसंस्कृतसाम्राज्य; राजेन्द्र मिश्र कृत प्रमद्वरा, विद्योत्तमा, प्रशान्तराघव तथा लीलाभोजराम, चतुष्पथीय आदि राधावल्लभत्रिपाठी कृत प्रेमपीयूष तण्डुलप्रस्थीय प्रेक्षणसप्तक (एकांकी) आदि हैं। दीपक भट्टाचार्य कृत धरित्रीपति - निर्वाचन (राजनीति की मूल्यहीनता पर आधारित); वीरेन्द्रकुमारभट्टाचार्य कृत शार्दूलशकट, वेष्टनव्यायोग (घेराव और हड़ताल पर आश्रित), लक्षणव्यायोग (नक्सलवाद का चित्रण), शरणार्थिसंवाद (बांग्लादेशी शरणार्थी समस्या पर) तथा शिवजी उपाध्याय कृत यौतक (दहेज पर आधारित), स्वातन्त्र्यशीर्य, प्रतिभापलायन, कालकूट (ड्रग्स पर आश्रित) विषयवस्तु की नवीनता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त वर्णनों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि किस प्रकार से आधुनिक संस्कृत साहित्य के रचनाकार अपनी नाट्य रचनाधर्मिता से संस्कृत जगत को देदीप्यमान कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

मूलग्रंथ –

1. उपाध्याय, रामजी-कैकेयीविजय,भारतीय संस्कृति संस्थान, वाराणसी,1999.
2. उपाध्याय,रामजी –अशोकविजय, भारतीय संस्कृति संस्थान, वाराणसी,2057 वि.सं.
3. खरवंडीकर, दे.प्र.-च्यवनभर्गवीय,गुंजारव कार्यालय,अहमदनगर,1974.
4. त्रिपाठी, विष्णुदत्त-अनुसूयाचरित,अमरकंटक,1994.
5. धनंजय- दशरूपक, व्या. शंकर भोला,चौखम्भा विद्याभवन,वाराणसी,2015.
6. नागरजन, के. एस.-उन्मत्तकीचक,भारतवाणी प्रकाशन, पुणे,1960.
7. पाण्डेय, रामाशीष – कर्णाजुनीय, प्रबोध संस्कृत प्रकाशन,रांची,1989.
8. भरतविशारटी, ई. वी. – कामदहन,दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली, 1992.

9. भरत- नाट्यशास्त्र,व्याख्याकार,चतुर्वेदी, ब्रज मोहन,विद्यानिधि प्रकाशन,दिल्ली , 2019.
10. भिवेलकर- क्षत्रपति श्री शिवाजीराज, देववाणी मंदिर, मुंबई,1974.
11. मिश्र, अभिराज राजेन्द्र – अरण्यानी, वैजन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999.
12. मिश्र, अभिराज राजेन्द्र – अकिंचनकांचन, वैजन्त प्रकाशन, इलाहाबाद,1974.
13. मिश्र, रामकिशोर – अंगुष्ठदान, महामना मालवीय महाविद्यालय, मेरठ, 1986.
14. दीक्षित, हरिनारायण – अजमोहभंग, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2009.
15. राघवन, वी., -अनार्कली, संस्कृत रंग, मद्रास, 1972.
16. राघवन, वी., -अवन्तिसुंदरी, संस्कृत रंग, मद्रास, 1956.
17. लोला, एस. आर. , अमरनायक, बंगलोर,1991.
18. शर्मा, हरिदत्त – आक्रंदन, आंजनेय प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998.

सहायक-ग्रंथ-

1. अग्रवाल ,हंसराज –संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली,1987.
2. उपाध्याय, बलदेव – संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन वाराणसी,पुनर्मुद्रण ,2001.
3. उपाध्याय, रामजी –नाट्यशास्त्रीय प्रयोग विज्ञान, भारतीय संस्कृति संस्थान नारीवादी, इलाहाबाद ,1981.
4. उपाध्याय, रामजी –मध्यकालीन संस्कृत रंगमञ्च, संस्कृत परिषद, सागर विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश,1984.
5. गुप्ता,उर्मिभूषण – संस्कृत नाटकों में नाट्यनिर्देश। जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ,1997.
6. गुंदेवा,संगीता- भास का रंगमञ्च , न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली,2004.
7. त्रिपाठी, राधावल्लभ- भारतीय नाट्यशास्त्र कि परंपरा एवं विश्व रंगमञ्च, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली,1998.
8. त्रिपाठी, रामसागर – भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमञ्च, अशोक प्रकाशन, दिल्ली,1978.

9.द्विवेदी, पारसनाथ – नाट्यशास्त्र का इतिहास, चौखम्भा सुरभराती प्रकाशन, वाराणसी,1995.

10.राजपुरोहित, बी.एल.- संस्कृत नाटक और रंगमञ्च , शिवालिक प्रकशन दिल्ली,2003.
11.नारायण, लक्ष्मी – रंगमञ्च और नाटक की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस ,दिल्ली,1965.

कोशग्रन्थ-

1. आप्टे, वामन शिवराम- संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली ,1966.
2. चतुर्वेदी, द्वारका - संस्कृतशब्दार्थकौस्तुभ,इलाहाबाद, 1959.
3. शर्मा,ईश्वरचन्द्र - पारिजात कोश, परिमल प्रकाशन,दिल्ली,2004.
4. सिंह,अमर- अमरकोश ,निर्णय सागर प्रकाशन , बम्बई,1961.